Chap-1

# प्रथम अध्याय

# विषय प्रवेश

परम कृपालु परमात्मा की अद्भुत, वैविध्यसभर एवं रमणीय क्रीड़ास्थली का नाम है सृष्टि। कहा जाता है कि परम ब्रह्म ने अपने एकाकीपन को दूर करने के लिए 'एकोहम् बहुस्यामि' बनकर जो लीला-विस्तार किया, वह है-संसार। महाप्राण निराला ने सृष्टि रुपी रंगमंच के विभिन्न प्राकृतिक दृश्यों की रमणीयता तथा सांसारिक जीवात्माओं की सहज स्वाभाविक अभिनयता का वर्णन करते हुए लिखा है कि "क्षण-क्षण विश्व परागों से युक्त एन्द्रजालिका शक्ति, परियो सी पंख खोलकर कलियों में खिलती, केशर-परागों से युक्त प्रकाश में उड़ती, रंगे कपड़े बदलती दिशाओं के आयत द्गों में हँसती, झरनों में गाती पुनः अज्ञात तम में अन्तर्धान होकर तादात्म्य प्राप्त करती हुई हास्य और रोदन, वियोग और मिलन, मौन तथा वीक्षण के नव रसाश्रित मधुर और भीषण कलरवोद्गारों से जीव-जन्तु स्वाभाविक अभिनय करते हुए. .. यह ईश्वरीय यथार्थ नाटक है। एक ही सर की सरस सृष्टि सरस्वती।" उक्त वर्णन में ईश्वरीय नाटक के साथ-साथ मानवीय नाटक के मूल रहस्य का बोध अभिव्यंजित है। प्रत्येक जीव इस विराट रंगमंच पर अपना अभिनय पूरा करके यहाँ से चला जाता है। जीवन की यह सहज स्वाभाविक नाटकीय वृत्ति ही हमारे साहित्यिक नाटकों की जननी प्रतीत होती है।

विधाता की समस्त सृष्टि में केवल मानव को ही बौद्धिकता, विचारात्मकता, रागात्मकता, भावप्रणता और कल्पना शक्ति का वरदान मिला है। इसके परिणाम स्वरुप वह न केवल सर्वश्रेष्ठ प्राणी मात्र है, बल्कि इन्हीं विशिष्ट शक्तियों के सहारे वह नर से नायारण बनने की क्षमता रखता है। अपने अन्तरस्थल में आवर्तित होती रागात्मक चेतना की अभिव्यक्ति वह आवश्यकात और इच्छानुसार भाव, भाषा, संकेत, भंगिमा द्वारा करता है। भाषा भावाभिव्यक्ति का सशक्त साधन होते हुए भी अपूर्ण है। हृदय की अत्यंत सूक्ष्म, गंभीर तथा रहस्यमयी भावनाओं को स्पष्ट करने के प्रयत्न में वाणी का उदात्त-अनुदात्त स्वरों में उत्थान पतनमय प्रवाह आँखों की प्रतिपल परिवर्तित दृष्टि-भंगिमाएँ, हाथों की चेष्टाएँ, मुख पर हास-करुणा के विभिन्न उतार-चढ़ाव आदि द्वारा अज्ञात अभिनय की भूमिका का ही निर्माण होता है। यही नाटक का अभिनय है। कोई भी व्यक्ति अपने जीवन में अभिनय शून्य नहीं हो सकता, चाहे वह रंगमंच पर अभिनय करे या न करे। अनुकरण मानव की सहज, स्वाभाविक प्रकृति-प्रवृत्ति है। जिस प्रकार बालक बडे होने की आकांक्षा में सहज रुप से बड़ों के क्रियाकलाप का निरीक्षण करता हुआ उसके अनुकरण की चेष्टा करता है। ठीक वैसे ही, मानवमन की जन्मजात प्रवृत्ति है, आत्मानुरंजन की विविध सामग्रियों का संकलन, वह प्रकृति के अनुकरण से करता है। सामान्य जीवन में भी मनुष्य प्रायः जाने-अनजाने, चाहे-अनचाहे अनुकरण का सहारा लेता रहता है। भरतमुनि ने अनुकरण की प्रवृत्ति को सार्वभौमिक और सार्वकालिक कहा है। जिससे देव-मनुज, राजा-रंक सभी प्रभावित हैं-

"देवतानां मनुष्याणां राज्ञा लोक महात्मनाम् ।
पूर्वकृतानु चरितं नाटकं नाम तद् भवेत् ।।"

जे. डब्ल्यू मेरियट भी इस अवधारणा के प्रबल पोषक एवं समर्थक हैं। इस प्रकार वांछित का सामीप्य और अवांछित की दूरी का यही सतत् प्रयत्न मनुष्य के जीवन-नाटक में सन्निहित है। प्राकृतिक अनुकरण का गुणात्मक परिणाम धीरे-धीरे विकसित होकर संभवतः नाटक में परिणत हुआ होगा। वस्तुतः भारतीय नाट्यशास्त्र के चिंतकों में नाट्य-रचना को जीवन की अनुकृति के साथ मानवीय परंपरा की मनीषा के परिप्रेक्ष्य में खुले नेत्रों से देखा-समझा है। यही नाट्य-विधा की विशिष्टता भी है। प्रत्येक काल में नाट्यकार ने नाट्य-रचना के माध्यम से मानव-संस्कृति और मानव-मूल्यों की खोज का प्रयास किया है। इसी प्रयास में जीवन भी परिभाषित होता रहता है।

नाटक के विभिन्न तत्वों के शनैः शनैः विकास के साथ प्राचीन समाज में नाटक का प्रारंभ कब से हुआ यह तो कहना कठिन है लेकिन यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि भरतमुनि की रचनाकाल से पूर्व नाटक विकास की किसी उच्च स्थिति तक अवश्य पहुँच चुका था। पूर्णरुपेण विकसित नाट्य-कृतियों के आधार पर ही भरतमुनि ने व्यवस्थित एवं उत्कृष्ट नाट्य शास्त्र की रचना की। प्राचीन कालीन आचार्यों ने काव्य के भेद-उपभेदों का सम्यक् निरुपण करते हुए यह घोषित किया है कि 'काव्येषु नाटकं रम्यम्' अर्थात् काव्यों में नाटक रमणीय होता है। मनुष्य इन्द्रियों के द्वारा बाह्य जगत् के पदार्थो का ज्ञान एवं भावों की अनुभूति करता है। इन सभी इन्द्रियों में सर्वाधिक सशक्त 'आँख' मानी जाती है। आँखों के द्वारा ग्राह्य जागतिक बोध का प्रभाव अधिक व्यापक, दीर्घकालीन एवं विश्वसनीय होता है। नाटक में आकार, रुप, नाम, दृश्य, विचार, भाव इन सबका समन्वय इतना सहज और रमणीय होता है कि मनुष्य-मन उसमें रमने लगता है।

साहित्य की समस्त विधाओं में नाटक ही एक ऐसी सशक्त विधा है जिसमें समस्त कलाएँ, सारे शास्त्र, सारे शिल्प, योग, कर्म आदि का समाहार होता है। नाटक की गुणवत्ता के आधार पर ही उसे 'पंचम वेद' की संज्ञा दी जाती है। भारतीय साहित्य में नाटक की उत्पत्ति धार्मिक, वैदिक अनुष्ठान से प्रेरित एवं अनुप्राणित मानी गयी है। हिन्दी साहित्य के आरंभ से पूर्व संस्कृत नाट्य-साहित्य की एक दीर्घकालीन परंपरा विद्यमान थी। लेकिन हिन्दी साहित्य के आदिकाल में यह परंपरा अविच्छिन्न रुप से विकसित होते हुए नहीं दिखाई देती है। एक लम्बे अरसे तक मानो हिन्दी नाट्य परंपरा सुषुप्त अवस्था में रही है। कतिपय पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों ने हिन्दी एकांकी को अत्यंत प्राचीन एवं दीर्घकालीन परंपरा से जोड़ते हुए

इसका सम्बन्ध भारतीय नाट्य-साहित्य के रुपक-उपरुपक के प्रकारों से जोड़ा है। इनके मतानुसार हिन्दी एकांकी संस्कृत नाट्य परंपरा की परिष्कृत, परिवर्ति, परिमार्जित एवं विकसित अत्याधुनिक कड़ी है जिसके शिल्प एवं कला का विकास पाश्चात्य की देन अवश्य है। यह निश्चित रुप से स्वीकार किया जा सकता है कि हिन्दी एकांकी के बीज अवश्य संस्कृत नाट्य-साहित्य में रहे होंगे लेकिन हिन्दी एकांकी का जो रुप आज प्राप्य है वह आधुनिक युग की देन है।

'साहित्य' शब्द के अर्थ के सम्बन्ध में डॉ. गुलाबराय का कथन है - साहित्य का अर्थ 'हितेन सहः सहितम्' अर्थात साहित्य वही है, जिससे मानव-हित का संपादन हो। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने जीवन की अभिव्यक्ति को साहित्य मानते हुए कहा है- "भाषा के माध्यम से जीवन की अभिव्यक्ति का नाम ही साहित्य है। सामाजिक भावों और विचारों की प्रतिच्छाया होने के कारण यह समाज का प्रतिबिम्ब है। मनुष्य द्वारा स्वरचित साहित्य से ही सामाजिक संस्कृति की रक्षा हो सकती है और इसी के द्वारा वर्तमान युग की जरुरतें पूरी होती हैं। निश्चय ही यह भूत और वर्तमान को अपने में समेटे हुए भविष्य का चित्र बनाकर, मनुष्य-मन प्रसादन करता है। इसका गुण निरंतरता ही है , सदैव चलने वाला ज्ञान का क्रम जो शाश्वत है, चिरन्तन है। यह जीवन की आत्म-कहानी है। यह वह विधा है, जिसमें मानव-मन सदियों से अपनी मनोवृत्तियों को चित्रित करता है, इसलिये साहित्य के स्वरुप को एक देश और एक काल में नहीं बांधा जा सकता। यह सार्वदेशिक और सार्वकालिक है। सब देशों और सब कालों में साहित्य सृजन का केन्द्र 'मानव' ही रहा है। उसकी रागात्मिका वृत्ति एक ही है, भावना का क्षेत्र एक है। इसकी सत्ता अखण्ड है, चिरंतन है, शाश्वत है। साहित्यकार का समाज से अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है क्योंकि वह एक सामाजिक प्राणी है। इसलिये उसके समाज की जो परिस्थितियाँ होती है, उनसे वह प्रभावित होता है और अपनी रचनाओं में उन्हीं को व्यक्त करता है। समाज में हो रहे क्रियाकलापों की प्रतिक्रिया ही साहित्य के रुप में अभिव्यक्त होती है। साहित्यकार अपने समाज के मुख और मस्तिष्क दोनों होते हैं। उसी के द्वारा हम समाज के हृदय तक पहुँचते हैं जो समाज का मात्र प्रतिबिम्ब ही नहीं, अपितु नियामक और उन्नायक भी हैं। अतः लेखक को साहित्य से पूर्व समाज से भी जुड़ना होगा, ऐसा साहित्य ही समाज को यथार्थ रुप दे सकता है। क्योंकि साहित्यकार की सहायता से ही हम समाज के हृदय तक पहुँचते हैं। केवल इतना ही नहीं बल्कि हमको उन स्थितियों का पता भी लग जाता है, जिसके प्रभावित होने से ही समाज के वातावरण में एक नयी लहर उत्पन्न हो जाती है।

आज का संसार, विचारों का संसार है। जब कोई परिवर्तन होता है तो इसका मूल स्त्रोत किसी

विचारधारा में ही रहता है। साहित्य हमारी ही अवस्था को दूसरों की उन्नत अवस्था से तुलना कर हमारा नेत्रोन्मीलन कर हममें शक्ति का संचार करती है। साहित्य हमारे अन्दर छुपे हुये भावों को व्यक्त कर हमको प्रभावित करता है। साहित्य के रुप में हमारे ही विचार मूर्तिमान होकर हमारा नेतृत्व करते हैं। समाज में जो परिवर्तन साहित्य के द्वारा होता है, वह तलवार द्वारा किये गये परिवर्तन से कहीं अधिक होता है। साहित्यिक कृति में समसामयिक सामाजिक स्थिति की प्रतिच्छाया अनिवार्य है। अतः साहित्यकार के रुप में एकांकीकार समाज में रहकर ही अपनी रचनाओं को निर्मित करता है। अपने जीवन में जो कुछ वह देखता है, सुनता है, जो अनुभव करता है और उन सबसे वह जो धारणाएँ बनाता है, उन्हीं सबकी सम्मिलित अभिव्यक्ति ही उसकी रचनाओं में प्रकट होती है। जब-जब देश में सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक परिवर्तन होते हैं तभी चित्तवृत्तियाँ भी बदलती हैं और साहित्य में भी परिवर्तन हो जाता है। इसीलिये साहित्यकार का हृदय दर्पण माना जाता है, जिसमें कई तरह के चित्र आते-जाते हैं। यह अवश्य है कि मानवता के आत्मप्रसाद में साहित्यकार का व्यक्तित्व विलीन हो जाता है। मनुष्य के सामाजिक प्राणी होने के कारण उसका समाज से बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। इसीलिये कहा गया है- "*Man is a social animal. Before we explain the relationship between man and society, it may be worth while to explain the orginal of society.*" मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास समाज में रहकर ही संभव है। समाज को रंगमंच माना गया है, जिसमें मनुष्य का व्यक्तित्व निखरता है। साहित्य समाज को उत्प्रेरित करता है। साहित्यकार और समाज का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि साहित्यकार की रचना में समाज का स्वरुप स्वतः मुखरित हो उठता है। उसके लिये साहित्यकार को कोई प्रयास नहीं करना पडता।

आज अधिकांश विद्वानों द्वारा यह स्वीकार किया गया है कि एकाकी का प्रारंभ हिन्दी में सर्वथा नवीनतम है। इसका जन्म कुछ ही वर्ष पूर्व अंग्रेजी के प्रभाव से हुआ है। नाटक और एकांकी के अन्तर को स्पष्ट करते हुए काव्यात्मक भाषा में यह कहा गया है कि नाटक एक विस्तृत, सघन उद्यान है जिसमें हर किस्म की घास, पौधे, फूल तथा फल के वृक्ष की विद्यमानता अनिवार्य होती है किन्तु एकांकी आज अत्याधुनिक साज-सज्जा से युक्त एक विशाल ड्राइंग रुप की टेबल पर रखा हुआ गुलदस्ता है, जिसमें हर दिन माली अधिकारी की अभिरुचि, गंध-वर्ण-प्रियता के अनुरुप नए-नए फूल सजाता है। एकांकी युगानुरुप एक प्रयत्न लाघव है। गागर में सागर की विराटता, गांभीर्य, गुणवत्ता समेटने का एक सार्थक प्रयास है। यह सर्वान्नुमत से स्वीकार्य है कि हिन्दी एकांकी अपनी मौलिकता, कलात्मकता और विशेषताओं में पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित है। आधुनिक एकांकी को परिभाषित करते हुए डॉ. दशरथ ओझा लिखते हैं कि जो नाटक एक अंक में समाप्त होने वाला, एक सुनिश्चित लक्ष्य वाला, एक ही घटना, एक ही परिस्थिति और

समस्या वाला हो और जिसके प्रवेश में कौतूहल और वेग, गतिमय विद्युत की वक्रता और तेजी, विकास में एकाग्रता तथा आकस्मिकता के साथ चरमसीमा तक पहुँचने की व्यग्रता हो और जिसका पर्यवसान चरमसीमा पर ही प्रभाव की तीव्रता के साथ हो जाता हो जिसमें प्रासंगिक कथाओं का प्रायः निषेध, घटनाओं की विविधता का निवारण तथा चारित्रिक प्रस्फुटन में आदि, मध्य व अवसान का वर्जन हो उसे एकांकी कहना चाहिए।

गतिशीलता में जीवन का संगीत है और जड़ता में महाशून्य का विस्तार। जय-पराजय, हर्ष-रोदन और आश-निराश में मानव मन की गहराईयों के असंख्य कथासूत्र निहित हैं। प्रत्येक उपलब्धि के लिए किए जाने वाले संघर्ष की हर चोट में आत्म-संवाद का नाद सुना जा सकता है ऐसे ही नाद की थाप से किसी रचना का जन्म होता है। फिर रचना चाहे गद्य में हो अथवा पद्य में। जहाँ तक एकांकी विधा का संबंध है यह अपने-आप मे जीवन को कभी अखण्ड रुप में तो कभी खंड-खंड रुप में देखेन-समझने का समन्वित रुप है।

१९वीं शताब्दी के पश्चात औद्योगिक क्रांति तथा वैज्ञानिक आविष्कारों ने न केवल मनुष्य के भौतिक जीवन शैली में परिवर्तन के नए-नए आयाम ढूँढें हैं अपितु जीवन के प्रति समग्रतया दृष्टिकोण ही बदल दिया है। बीसवीं शताब्दी की औद्योगिक प्रौद्योगिकी ने मानव-मन को आधुनिकीकरण की ओर आकृष्ट किया परिणामस्वरुप पूंजीवादी, उपभोक्तावादी तथा स्वकेन्द्रीय सभ्यता का निर्माण हुआ। जीवन के प्रति भौतिकवादी दृष्टिकोण ने पारंपरिक सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक मूल्यों एवं धारणाओं को त्वरित गति से बदल दिया। वैज्ञानिक विकास ने मानव-जीवन को एक ओर साधन सम्पन्न बनाकर उसे अनेक सुख-सुविधाएँ, उपलब्धियाँ आदि प्रदान की लेकिन दूसरी ओर मानसिक तनाव, शंका-आशंका, चिन्ता, संघर्ष आदि भी उपहार में प्राप्त हुए। विज्ञान की सहायता से मनुष्य प्राकृतिक शक्तियों पर भी अपना अधिकार जताते हुए अपने आपको अधिक शक्तिशाली सिद्ध करने लगा लेकिन एकांकीपन, स्वार्थलोलुपता, अंधानुकरण, मशीनीकरण, अविश्वसनीयता, निराशा, अनास्था, विघटन, विसंगतियाँ आदि से उत्पन्न अशांति और अनेक प्रकार की त्रासदियों का शिकार भी हुआ। विज्ञान के बढते हुए प्रभाव से वस्तुवादी जगत् में आध्यात्मिक श्रद्धा और धार्मिक मान्यताएँ उपेक्षित हो गई हैं। इस बाह्य-आंतरिक संघर्षयुक्त मानव जीवन को सफलता से प्रतिबिम्बित करने का काम आधुनिक एकांकियों ने किया है। संघर्ष-युग में जन्म लेने वाली एकांकी विधा संघर्ष से ही पालित और पोषित भी हुई है। उसकी प्रसिद्धि और

लोकप्रियता ने सहज ही मेरे मन में एकांकी साहित्य के प्रति कौतुहलवश जिज्ञाशा उत्पन्न की। क्या आज की एकांकियाँ मानव-मन के आंतर-बाह्य संघर्ष को इतने सशक्त रुप से प्रतिपाद्य करती हैं जिनसे मनुष्य साधारणीकरण का अनुभव करके आनन्द प्राप्त कर सके? या उनमें जीवन की विडम्बना-विसंगति, हताशा-निराशा, हतोत्साह, चिन्ता-आशंका आदि का वहन करने में साहित्य की लोकप्रिय विधा कहाँ तक सक्षम है यह देखने का मेरा बालीश प्रयास है।

"हिन्दी एकांकियों में आधुनिक मानव जीवन की समस्याएँ" नामक प्रस्तुत शोध प्रबंध निम्नलिखित पाँच अध्यायों के द्वारा विवेचित किया गया है :-

**प्रथम अध्याय :** विषय प्रवेश से सम्बंधित है। इसमें विषय के चयन सम्बंधी बातों की स्पष्टता करते हुए विषय की महत्ता और अनिवार्यता को प्रतिपादित करने का यथासंभव विनम्र प्रयास है। एकांकी-साहित्य से सम्बंधित अद्यावधि प्राप्त ग्रंथों मे अध्ययन की दिशाओं एवं उनमें निरुपित उपलब्धियों के प्रकाश में प्रस्तुत शोध-विषय की आवश्यकता को प्रस्तुत किया गया है। आधुनिक मानव-जीवन के साथ एकांकी साहित्य का संबंध, संबंधों की घनिष्टता एवं उसकी उपयोगिता को प्रस्तुत करने का यहाँ यत्न किया गया है।

**द्वितीय अध्याय :** इसमें भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गई एकांकी की परिभाषाओं, तत् विषयक विद्वानों के मत आदि के अभ्यास के द्वारा एकांकी का स्वरुप निर्धारण किया गया है। साथ ही हिन्दी एकांकी के प्रारंभ और क्रमिक विकास के रुप में इतिहास की रुपरेखा प्रस्तुत है। आधुनिक हिन्दी एकांकी के विकास के विभिन्न सोपानों क्रमशः भारतेन्दु युग और भारतेन्दुमण्डल के अन्य एकांकीकार, द्विवेदी युगीन एकांकीकार, प्रसादयुग और अन्य एकांकीकार प्रसादोत्तर अथवा नवीन युग के एकांकीकार तथा उनकी एकांकी रचनाएँ जिनका एकांकी के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। उनका परिचय देते हुए तत् सम्बन्धी विशेषताओं का आंकलन भी इसमें प्रस्तुत है।

**तृतीय अध्याय :** प्रस्तुत अध्याय हिन्दी एकांकियों के परिचय से सम्बंधित है। आधुनिक युग के प्रमुख एकांकीकारों के संक्षिप्त परिचय के साथ उनकी रचनाओं का विषयगत एवं शैलीगत परिचय प्रस्तुत है। इन एकांकियों के परिचय के आधार पर उनमें निहित विषयगत वैविध्य, शैलीगत वैशिष्ट्य आदि भी प्रस्तुत है।

**चतुर्थ अध्याय :** तृतीय अध्याय में प्रस्तुत एकांकियों के परिचय के आलोक में समकालीन मानव-जीवन की व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक

परिवेश और उनसे जुड़ी समस्याओं का दिग्दर्शन एवं उनके समाधानों को एकांकियों के संदर्भ में ढूँढने का यत्न किया गया है। आज के वैज्ञानिक युग अर्थात् वस्तुवादी जगत् में मानव-जीवन के बदलते हुए प्रतिमान, विघटित एवं पतनोन्मुख जीवन दृष्टि, विसंगतिपूर्ण एवं खंडित जीवन मूल्यों, उभरते हुए मानसिक द्वन्द्व, अलगाव एवं अनिश्चय की स्थितियाँ-परिस्थितियाँ, संत्रस्त मानवहृदय, स्वार्थलिप्त वैचारिकता, बदलता सामाजिक परिवेश तथा उसके बनते-बिगडते रुप, टूटती पारिवारिक इकाइयाँ, जीवन की आपाधापी, मानव संबंधों की विकृतियाँ आदि का निरुपण है। धार्मिक श्रद्धा के स्थान पर जीर्ण-शीर्ण मान्यताएँ, उपेक्षित दृष्टि, सडी-गली परंपराएँ, रुढियाँ, धर्म के नाम पर ढोंग-पाखण्ड, अंधविश्वास एवं अंधश्रद्धा से उत्पन्न सामाजिक-सांस्कृतिक अवमूलन, जो आधुनिक मनुष्य के जीवन को विषाक्त बनाये हुए है। विभिन्न धर्मो के नाम से सामाजिक बिखराव के गंभीर परिणाम, जीवन के प्रति भोगवादी एवं भौतिकवादी दृष्टिकोण से उत्पन्न समकालीन मानव-जीवन में संत्रास और त्रासदियों आदि के निवारण हेतु समाधान को एकांकियों के संदर्भ में खोजने का यत्न किया गया है। समकालीन असंख्य राष्ट्रीय समस्याएँ, साम्प्रदायिक वैमनस्यता, भ्रष्टाचार एवं शोषण के विरुद्ध तथा मूल्यध्वंस से आहत समाज को राहत दिलाने के उद्देश्य से और परस्पर सद्भावना के प्रचार-प्रसार के परिप्रेक्ष्य में एकांकियों में जो उद्घोष व्यक्त है उन्हें चित्रित करने का यत्न किया गया है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ जिन असंख्य विसंगतियों, विद्रुपताओं और विकृतियों ने भारतीय जनमानस को त्रासद साँस लेने को विवश किया है, उनकी यथार्थवादी प्रस्तुति के द्वारा हिन्दी एकांकीकार ने एकांकी रचना को न केवल नए आयाम दिए है अपितु समाज में पनपते घिनौने चेहरों को भी पूरी प्रखरता और, प्रचडता के साथ बेनकाब किया है। समकालीन हिन्दी एकांकी अपने परिवेश के साथ पूरी सच्चाई के साथ रचा-पचा है। एकांकी लेखन जहाँ भारतीय स्वतंत्रता, सार्वभौम अखण्डता और प्रभुसत्ता के प्रति निष्ठापूर्वक समर्पित है वहाँ सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, साहित्यिक शोषण पर तीखे व्यंग्य-प्रहार की दृष्टि से भी पूरी सजगता के साथ सक्रिय है। गुणात्मक प्रकर्ष की दृष्टि से आज का हिन्दी एकांकी किसी-न-किसी छोर पर आम आदमी की पीड़ा को मुखर करता है। आज का एकांकीकार मनुष्य की सदाशयता को पूरी तरह से स्वीकार करता है।

**पंचम् अध्याय :** यह अध्याय उपसंहार के रुप में प्रस्तुत है। शोध के प्रमुख विषय द्वारा यह देखने का यत्न किया गया है कि अपने लघु रुप में एकांकी-साहित्य में आधुनिक मानव-जीवन की समस्याओं का निरुपण कितने विशद् और व्यापक रुप में हुआ है। क्या एकांकी मानव-जीवन की समस्याओं का निराकरण प्रस्तुत

करने में सफल है या असफल है? इनसे सम्बन्धित तथ्यों का निष्कर्ष यहाँ प्रस्तुत है। एकांकी विधा का विश्लेषण केवल प्राचीन मानदण्डों से न करके इसमें निरुपित घटनाओं तथा समस्याओं का संबंध मानव-जीवन के मनोव्यापारों से जोड़ा गया है। आधुनिक मानवृजीवन की पृष्ठभूमि पर एकांकी में निहित घटना और समस्या का स्वाभाविक उभार को देखने का प्रयत्न किया गया है। इसके अन्तर्गत सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक और सार्वजनिक कुकृत्यों के विभिन्न पहलूओं को उभारा गया है। उसमें समस्त शोध कार्य की उपलब्धियों, समस्याओं, विशिष्टताओं आदि से सम्बंधित निष्कर्षो को प्रबन्ध की प्रस्थापनाओं के रुप में रेखांकित करने का प्रयास किया गया है। हिन्दी एकांकियों में मानव-जीवन के विभिन्न पक्षों का समकालीन परिवेश से सम्बन्ध स्थापित करते हुए उनके दैनिक समस्याओं के रुप में चित्रण किया गया है।

इस प्रकार 'हिन्दी एकांकियो में आधुनिक मानव जीवन की समस्याएँ' नामक प्रस्तुत शोध ग्रन्थ में एकांकी जैसे लघु साहित्यिक रुप का समकालीन मानव-जीवन के साथ घनिष्ट संबंध को देखने का यत्न किया गया है। एकांकी की लोकप्रियता के संबंध में अक्सर यह मत प्रस्तुत है कि गीत, कहानी, निबंध आदि साहित्य के लघु रुप के साथ एकांकी का प्रचार और प्रसार इसलिए अधिक है कि आधुनिक युग का मानव अपने जीवन की दौड़ में अत्यधिक व्यस्त है। उसके पास समय का नितान्त अभाव है। अतः ऐसे में एकांकी जैसी लघु विधा का लोकप्रिय होना स्वाभाविक है। यद्यपि प्रो. रामचरण महेन्द्र, भोलानाथ तिवारी जैसे विद्वानों ने प्रमाण के साथ उक्त विचार को बेबुनियाद सिद्ध किया है। फिर भी एकांकी की लोकप्रियता का कोई वैज्ञानिक एवं ठोस कारण स्पष्ट नहीं कर पाये हैं। कोई भी रचना या विधा केवल अपनी लघुता एवं संक्षिप्तता के कारण लंबे अरसे तक लोकप्रिय नहीं रह सकती। अतः सहज ही यह जिज्ञासा जागृत होती है कि एकांकी में ऐसा क्या है; जो मानव-मन और मानव-समाज को अपनी ओर आकर्षित करता है। एकांकी के कथ्य में संभवतः मानव-मन की तीव्र संवेदना का प्रतिबिम्ब विद्यमान है अथवा मनुष्य अपने जीवन की समस्याओं का निराकरण उनमें पाता है।

प्रस्तुत शोध ग्रंथ में उक्त मनोवैज्ञानिक कारणों के परिप्रेक्ष्य में एकांकी के साथ समकालीन मानव-जीवन के घनिष्ट संबंध को देखने का यत्न किया गया है। यह सर्वविदित है कि आधुनिक मानव-जीवन में जितनी पीडा, संघर्ष, चिन्ता, संत्रास, एकाकीपन से उभरनेवाली निराशा, उदासीनता, हताशा आज है वैसी पहले कभी नहीं रही। एकांकी अपनी सीमाओं के साथ भी उक्त समस्याओं को प्रभावात्मक रुप से प्रतिबिम्बित करने में न केवल सक्षम है बल्कि उन समस्याओं के निराकरण को इंगित करने में भी

सफल है। इस प्रकार आज एकांकी मानव-जीवन के अत्यधिक निकट है और लोकप्रिय साहित्यिक विधा के रुप में प्रस्थापित हो चुकी है।

युग-विधा की संज्ञा वही साहित्य प्राप्त करता है जिसमें एक युग की वास्तविक प्रतिकृति का यथार्थ चित्रण हुआ हो, जिस प्रतिकृति को देखकर वर्तमान मानव अपने जीवन को गति देने और उसे संवारने की प्रेरणा पा सके, और आगत मानव उस युग का सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, समग्र जीवन का दर्शन कर सके और समझ सके यह किस धरातल से आगे बढकर वर्तमान स्थिति को प्राप्त हुआ है। यह प्रतिकृति ऐसी होती है, जो तत्कालीन मानव को युग-वास्तव का यथार्थ दर्शन कराने के साथ-साथ, उसके जीवन को स्वस्थ गति भी प्रदान करती है। युग यथार्थ का जो चित्र जीवन की विरुपताओं मात्र का चित्रांकन उपस्थित करता है, जिससे युग मानव में सजगता के स्थान पर अपने जीवन में स्वस्थ गति के स्थान पर विरक्ति और निराशा का भाव उदित होता है, वह चित्रांकन कभी जीवित और महान नहीं होता। इसके विपरीत, यथार्थ चित्रण जीवन की महान् यथार्थ तस्वीर के साथ जीवन की महान् स्वस्थ संभावनाओं की ओर मानव को गति देता है। ऐसी विधा जो जीवन वास्तव के दर्शन के साथ उन्हें उनके जीवन की स्वस्थ गति और विकासक्रम का दर्शन करा सके, और जो आज जीवन में आगे बढने की प्रेरणा और बल प्राप्त कर सके, जीवन को स्वस्थ और उदात्त बनाने का आत्मबल प्राप्त कर सके। ऐसी विधा गौरवशाली परंपरा और विरासत का स्थान पाती है, जिसके अनुशीलन से आगत मानव अपने जीवन की समस्याओं पर तथा जीवन संघर्ष पर विजय प्राप्त करने की चेतना प्राप्त करता है। रचना की प्रासंगिकता उसका जीवन संदर्भो से जुडे रहना है। जो रचना हमारे जीवन के जितना अधिक निकट है उससे जितना 'करैसपौण्ड' करती है वह उतनी ही अधिक प्रासंगिक है। लेकिन जीवन से जुडे रहने का अर्थ जीवन की सम-विषम स्थितियों की स्वीकृति ही नहीं, उनसे टकराना और जूझना भी है। अपने आस-पास के दायरों को तोडना या तोड़ने की प्रक्रिया में स्वयं उनसे कट जाना। क्योंकि रचना की सार्थकता इसी में है कि कहॉ तक उससे उस दायरे की मानसिक अपेक्षाओं की पूर्ति होती है। उपरोक्त सभी गुणों को पूरी सार्थकता और प्रखरता के साथ अपने में संजोने के कारण एकांकी की उपयोगिता सर्वोपरि है। यह सबसे प्रमुख साहित्यिक विधा है। इन विशिष्टताओं के अतिरिक्त एकांकी आज के तकनीकी प्रगति से व्यस्त जीवन में अपने लघु आकार के कारण अपना महत्व सबसे अधिक रखती है।

एकांकी की समाज-सुधार की शक्ति महान् है। आज एकांकीकार जीवन की रेखाओं में रंग भरकर घटनाओं तथा पात्रों के माध्यम से विशिष्ट संवेदना पर अंकुश रखना चाहता है। यह संवेदना चाहे

राष्ट्र की हो, इतिहास की हो, समाज की हो और चाहे धर्म या परिवार की हो। डॉ. रामकुमार वर्मा के शब्दों में "आज का एकांकी सत्य के तार पर उंगली की वह चोट है जिससे जीवन का संगीत गूँजता है, और तार की पतली रेखा से निकलकर समस्त दिशाओं को मुखरित कर देता है।" आज एकांकी फोड़े की भाँति कसकने वाली घटनाओं को अपने अन्तःकरण में छिपाये अधुनातन नाट्य-शिल्प की सज्जा से सज्जित होकर 'काम कुसुम धनुसायक लीने, सकल भुवन अपने बस कीने' की उक्ति चरितार्थ कर रही है। डॉ. वर्मा ने 'ऋतुराज' में एकांकी की महत्ता स्थापित करते हुए बताया है कि "आज के जीवन में अनेक समस्याएँ एक ही स्थान पर गिरे हुए पतंग के डोरे की भाँति उलझी हुई हैं, उन्हें गहरी से देखकर सतर्क अंगुलियों से सुलझा देने की कुशलता एकांकी में है।"

आज इतने दीर्घ अंतरालोपरांत विघटन विचारक परिस्थितियों से विकृत आज के बौने समाज में भावविहिन, समाज से प्रताड़ित, आज का मानव इस कलुषित मनोविकृतियों से निजात पाना चाहता है। आज का जन-जीवन संत्रस्त है, खण्डित है। उसके सभी रुपों को, सभी पक्षों का थाह पाना अपने आप में नाटकीय है। जीवन के ऐसे क्षणों में मनुष्य हताश-निराश हो जाता है। उसे कोई मार्ग नहीं सूझता है। केवल अपलक-सा हतोत्साहित होकर ऐसे मार्ग को ढूँढना चाहता है जो उसे एक बार फिर गति प्रदान करे। केवल एकांकी में ही यह संभव है कि इतने गंभीर पक्ष को इतनी कुशलता से चित्रित किया जाए। अपने प्रभावों, मूल्यों और विशिष्टताओं के फलस्वरुप 'एकांकी' ने वह स्थान पा लिया है। जो अन्य कोई भी विधा नहीं पा सकी। अन्य विधाओं की तुलना में एकांकी-विधा युग-सापेक्ष अनुभूति परक जीवन से जुडी समस्याओं का दिग्दर्शन करने में अधिक सक्षम एवं समर्थ प्रतीत होती है। क्योंकि आज की स्थिति-परिस्थिति से बँधे-गुँथे जीवन की यह साक्ष्य है। वर्तमान के एक-एक क्षण के साथ उसकी सम्पृक्ति है जिसमें इतिहास के कुछ क्षण भी नई अर्थवत्ता लेकर प्रकट होते है और अनागत को इससे नयी दृष्टि मिलती है।

मै परम श्रद्धेय डॉ. अनुराधा दलाल (हिन्दी विभागाध्यक्षिका, म स. विश्वविद्यालय, बडौदा) का श्रद्धापूर्ण अभिनन्दन करना अपना पुनीत कर्तव्य समझती हूँ, जिनके मार्गनिर्देशन में मैंने यह शोध सम्पन्न किया है। आपने अपने अमूल्य एवं अतुलनीय अनुभवों के माध्यम से यथास्थान संशोधन करते हुए मेरे ज्ञान-चक्षुओं को दिप्त किया तथा दुष्कर मार्ग में अवरोध उत्पन्न करने वाले तत्त्वों से बचाते हुए इनमें प्राण-प्रतिष्ठा की। आपकी धीर-गंभीर अध्ययन से दीप्त मुद्रा ने ही मुझे अध्ययन अन्वेषण का कायल बनाने मं महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। मैं उनके प्रति नत-मस्तक हूँ। यदि कभी भी मैं अपने अध्ययन मार्ग से विचलित हुई तो उन्होंने अपने माँ-तुल्य वात्सल्यपूर्ण स्नेह के आँचल तले मेरा उचित मार्गदर्शन किया

तथा निजी जीवन से जुड़ी जटिलताओं और सत्यता से भी मेरा यथासंभव परिचय करवाया। वस्तुतः शोध विषयक मौलिकता का सारा श्रेय उन्हीं को है, क्योंकि इस विषय को शोध विषय के रुप में स्वीकारने के लिए जिस मानसिक सिद्धता की आवश्यकता होती है तथा सोच-विचार की जिन दिशाओं का दिग्दर्शन जरुरी होता है, उनके लिए उनकी प्रेरणायें मेरे पीछे सर्वदा रही हैं। इसे मैं कदापि भूल नही सकती हूँ। मेरी दृष्टि में मात्र शब्दों में आंकलन संभव ही नहीं है। अथक प्रयासों और जाने-अनजाने में किए गए उनके प्रेरणास्पद कार्य, सदा ही मेरे पथप्रदर्शक बने हैं। वह मेरे लिए सुनिधि एवं अवर्णनीय हैं जिसका मूल्य मैं तमाम उम्र नहीं चुका सकती।

कलासंकाय के हिन्दी विभाग के विष्णु विराट चतुर्वेदी, डॉ. प्रेमलता बाफना, डॉ. अक्षयकुमार गोस्वामी, डॉ. शैलजा भारद्वाज, डॉ. इन्दु शुक्ला के साथ-साथ मैं विभाग के अन्य उन सभी गुरुजनों के प्रति कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने मुझे प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रुप से प्रेरणा दी, इस कार्य को सम्पन्न करने का अमूल्य सत्परामर्श प्रदान किया। अपने शोध कार्य में मुझे जिन विद्वानों से प्रेरणा और सहयोग प्राप्त हुआ है, उन सबके प्रति मैं आभार व्यक्त करती हूँ।

पूज्यनीय माता-पिता के स्नेह, आशिर्मय वरद्हस्त एवं सतत् प्रोत्साहन का यह सुफल है कि यह शोध कार्य मैं सम्पन्न कर पायी हूँ। अतः उनके प्रति मैं नतमस्तक हूँ।

अपने शोध के दौरान मुझे जिन संस्थाओं, विभागों आदि का सहयोग प्राप्त हुआ उन सभी के प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापन करती हूँ। हंसा मेहता लायब्रेरी, महाराजा सयाजीराव युनिवर्सिटी बडौदा, सरदार पटेल युनिवर्सिटी की भाईकाका लाइब्रेरी, विद्यानगर, सेन्ट्रल लाइब्रेरी, माडवी बडौदा आदि सभी ग्रंथालयों के प्रति अपना विनीत आभार व्यक्त करती हूँ।

विद्वानों से मेरा नम्र निवेदन है कि शोध की दिशा में किए गए मेरे इस छोटे से प्रयास को स्वीकार करें और अज्ञानतापूर्ण हुई त्रुटियों को उदार हृदय से क्षमा प्रदान करें। मैं आशा करती हूँ कि यथाशक्ति किया गया यह कार्य अवश्य पसद आयेगा। यदि नाममात्र भी मैं अपने उद्देश्य में सफल होती हूँ और कुछ भी कृपा दृष्टि मुझे प्राप्त होगी तो मैं स्वयं को धन्य ही समझुँगी।